संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● संयुक्तांक : २१ एवं २२ ● २५ मई एवं ०१ जून, २०२३ (गुरुवार) ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वादशी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

महर्षि दयानंद सरस्वती जी की 200वीं जयंती के आयोजनों के परिपेक्ष्य में

केंद्रीय आयोजन समिति की बैठक में लिए गए महत्वपूर्ण निर्णय

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा बैठक में शामिल

आर्य समाज १५ हनुमान रोड नई दिल्ली के सभागार में दिनांक २१ मई २०२३ को महर्षि दयानंद सरस्वती जी की २००वीं जयंती के परिपेक्ष्य में एवं आर्य समाज के १५०वें स्थापना दिवस के शुभ अवसर पर आगामी २ वर्षों के आयोजनों के विषय में केंद्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र कुमार आर्य जी की अध्यक्षता में एवं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेश चंद्र आर्य जी, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा जी सहित तमाम राज्यों के पदाधिकारियों हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, हिमांचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, चेन्नई आदि की उपस्थिति में एक बैठक की गई। बैठक का संचालन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमंत्री श्री विनय आर्य जी ने किया। आगामी २ वर्षों तक महर्षि दयानंद की शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु कई महत्वपूर्ण निर्णय सर्वसम्मति से लिए गए।

केन्द्रीय आयोजन समिति के आगामी कार्यक्रम

- कश्मीर से कन्याकुमारी तक होगा ज्ञान ज्योति यात्रा का भव्य आयोजन
- आर्य समाज के 350 महापुरुषों की जीवनी, सेवाकार्यों का होगा सृजन
- 400 परिवारों को चारों वेदों के मंत्र कंठस्थ कराके बनाया जाएगा वेद परिवार
- 10 लाख विद्यार्थियों की महर्षि दयानंद कॉमिक्स प्रतियोगिता के आयोजन
- सत्यार्थ प्रकाश स्वाध्याय एवं समूह गान प्रतियोगिताओं के आयोजन
- आर्य समाज के शेष इतिहास को विधिवत किया जाएगा निर्मित

प्रांतीय सभाओं के सुनिश्चित कार्यक्रम

- अपने राज्य में ज्ञान ज्योति यात्रा के स्वागत और मार्गों का करें निर्धारण
- प्रत्येक प्रांतीय सभा अपने राज्य में ज्ञान ज्योति पर्व का करें भव्य आयोजन
- राज्य सरकारों के सभी अधिकारियों को अपने कार्यक्रमों में करें आमंत्रित
- महर्षि दयानंद सरस्वती की दो 200वीं जयंती पर अवकाश घोषित कराएं
- सार्वजनिक एवं विशिष्ट स्थानों का महर्षि के नाम पर कराएं नामकरण
- महर्षि की तपस्थलियों को प्रेरणा स्थली के रूप में प्रसिद्ध कराएं
- 750 दिनों में 200 लोगों को आर्य समाज से जोड़ने का रखेंगे लक्ष्य
- 100 लोगों से 1000 तक पहुंचने वालों को शतकवीर, सहस्रवीर सम्मान
- 52 साप्ताहिक सत्संगों में महर्षि दयानंद की जीवनी (दयानंद प्रकाश) का करें स्वाध्याय, आर्य समाज के इतिहास के 52 अध्यायों का करें स्वाध्याय
- मेरी पहचान आर्य समाज, मेरा परिवार आर्य परिवार को चरितार्थ करने के लिए आर्यजन लें संकल्प

वेदामृतम्

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्

ऋ० ६.७३.८

'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अमृत का धर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म-समर्पण करे, उसे अपने हृदय-मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करें। यदि मानव जीवन में उसको हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभऋतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अतः 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तौन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता '' और फर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अतः वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र है, मन में वह पाप-चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद-शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अतः प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य के मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमशः वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी प्राँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक-चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुत्रों को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ-कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुवृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्य कूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें।

साभार-वेदमंजरी

उपनिषद वांग्मय में (वैदिक) ईश्वर चिंतन

-स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती

भारतीय चिंतन में ही नहीं मानव चिंतन में भी उपनिषदों का चिंतन उल्लेखनीय स्थान रखता है। उपनिषदें भारतीयों और आर्यों के आध्यात्मिक चिंतन की विश्वसनीय स्रोत है। वेदों के पश्चात प्रमाणित माने जाने ग्रंथों में शीर्षस्थ हैं।

महर्षि दयानंद ने अपने ग्रंथों में उपनिषदों के क्रमशः उद्धरण प्रस्तुत किए हैं तथा अपने दार्शनिक मत की पुष्टि में उन्हें भूरिशः उद्धत किया है।

उपनिषद भवन की आधारशिला इशोपनिषद हैं। उपनिषद में जो शिक्षाएं दी गई हैं उनको वेद की शिक्षा का सार कह सकते हैं और उन्हीं शिक्षाओं का विस्तार पश्चात की उपनिषदों में किया गया है।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहार (Schopenhaur) ने अपनी जगत प्रसिद्ध फिलासफी का आश्रय छोड़कर उपनिषद को ही जीवन और अंत दोनों कालों के लिए शांति दायक समझा था।

"In the whole world there is no study beneficial and so elevating as that of upnishads. It has the solace of my life and it will be the solace of my death."

बहुतों ने उपनिषद की टीकायें लिखी और व्याख्यान भी किये हैं। इनमें सबसे पुरानी टीका संस्कृत में श्री शंकराचार्य की है।

क्रमशः पृ. ६.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

सत्य एवं असत्य

संसार में सत्य और असत्य दोनों चलते रहते हैं। ''देखने में तो यही आता है, कि सत्यभाषण सत्य का पालन व्यवहार आचरण संसार में बहुत कम मात्रा में होता है। अधिकतर असत्य का ही बोलबाला दिखाई देता है।'' ''जब व्यक्ति असत्य मानता है, असत्य बोलता है असत्याचरण करता है, तो उसके साथ-साथ अन्य भी बहुत से दोष उसके जीवन में आ जाते हैं। जैसे छल कपट बेईमानी राग द्वेष लड़ाई झगड़ा छीना झपटी अन्याय शोषण चोरी व्यभिचार इत्यादि।'' व्यक्ति इस प्रकार के सारे पाप करता जाता है, और झूठ बोल बोल कर लोगों को मूर्ख बनाता रहता है, और यह प्रदर्शन करता है, कि ''मैं बहुत अच्छा व्यक्ति हूं। मैं तो कोई भी दोष नहीं करता।'' परंतु उसके जीवन में इसी मिथ्या भाषण नामक एक दोष के कारण बहुत से पाप इकट्ठे होते जाते हैं।

''जब व्यक्ति इस प्रकार का झूठ छल कपट का व्यवहार करता है, तब वह अधिकतर स्वयं अपने अंदर तो जानता ही है, कि ''मैं झूठ बोल रहा हूं। मैं छल कपट कर रहा हूं इत्यादि।'' जानते समझते हुए भी वह अपने आप को उस मिथ्याभाषण मिथ्याचरण से रोकता नहीं है। यदि रोकना चाहे तो रोक सकता है। उसका उपाय है, ''उसे सदा मनुष्य समाज का और ईश्वर का दंड याद रखना चाहिए।'' क्योंकि वेद आदि शास्त्रों में कहा है, कि ''दंड के बिना कोई सुधरता नहीं है।'' ''इसलिए जब तक व्यक्ति को दंड याद नहीं रहेगा, तब तक वह झूठ छल कपट मिथ्याचरण आदि अनेक प्रकार के दोष करता रहेगा। और जब उसे दंड याद रहेगा, तब वह इन सारे दोषों से मुक्त हो जाएगा।''

''अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए, हठ दुराग्रह आदि के कारण, और अनेक बार अविद्या के कारण भी व्यक्ति सत्य को छोड़कर असत्य की ओर बढ़ जाता है। फिर वह अनेक पाप करता है, और जन्म जन्मान्तरों तक उन पापों का दंड भोगता रहता है।''

''हठ का अर्थ है, स्वयं किसी गलत बात पर अड़ जाना। जैसे कोई कहे, कि ''५x८=३३ होता है।'' और दुराग्रह का अर्थ है, कि ''दूसरे व्यक्ति को भी उस गलत बात को मानने के लिए मजबूर करना, उस पर दबाव डालना, कि ''तुम भी ५x८=३३ ही मानो। अन्यथा तुम्हें मारूंगा।''

''अतः ईश्वर को साक्षी मानकर सब कार्य करें। मनुष्य समाज का और ईश्वर के दंड का भय सदा अपने मन बुद्धि और आत्मा में रखें। तभी आप पाप कर्मों से बच पाएंगे।'' ''समाज और ईश्वर का पुरस्कार सदा याद रखें, तभी आप अच्छे काम कर पाएंगे। दूसरों को भी सुख दे पाएंगे, तथा स्वयं भी सुखी हो पाएंगे। यही मनुष्य जन्म को सफल करने का उपाय है।''

-स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक
की कलम से।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इज्जील

६८-हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। अपने लिए पृथिवी पर धन का संचय मत करो।।

-इ० म०प० ६ आ० ११ ।। १९ ।।

समीक्षक) इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ है उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसी से तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चल कर सब दान पुण्य करके दीन हो जायें।। ६८।।

६९-हर एक जो मुझ से हे प्रभु हे प्रभु कहता है स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा।

-ई० म० प० ७। आ० २१।।

(समीक्षक) अब विचारिये! बड़े-बड़े पादरी बिशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझें तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें। यदि इस बात को न मानेंगे तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे।। ६९।।

७०-उस दिन में बहुतेरे मुझ से कहेंगे।। तब मैं उनसे खोल के कहूँगा मैंने तुम को कभी नहीं जाना। हे कुकर्मम करनेहारो! मुझ से दूर होओ।।

-इं० म० प० ७। आ० २२ २३।।

(समीक्षक) देखिये! ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिए स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है।। ७०।।

७१-और देखो एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा हे प्रभु! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं।। यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा मैं तो चाहता हूँ शुद्ध हो जा और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया।।

-इं० म० प० ८। आ० २ ३।।

(समीक्षक) ये सब बातें भोले मनुष्यों के फंसाने की हैं। क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य्य, धन्वन्तरि कश्यप आदि की बातें जो पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दी। बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा-टुकड़ा कर जानवर मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य्य ने जीता कर दिया। पश्चात् कच को मार कर शुक्राचार्य्य को खिला दिया फिर उसको पेट में जीता कर बाहर निकाला। आप मर गया उसको कच ने जीता किया। कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया। धन्वन्तरि ने लाखों मुदे जिलाये। लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया। लाखों अन्धे और बहिरों को आख और कान दिये इत्यादि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसा की बातें मिथ्या क्यों नहीं? जो दूसरे की बातों को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं तो हठी क्यों नहीं। इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान हैं।। ७१।।

७२-तब दो भूतग्रस्त मनुष्य कबरस्थान में से निकलते हुए उससे आ मिले। जो यहां लो अतिप्रचण्ड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था।। और देखो उन्होंने चिल्ला के कहा हे यीशु ईश्वर पुत्र! आपको हम से क्या काम, क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहां आये हैं।। सो भूतों ने उससे विनती कर कहा जो आप हमें निकालते हैं तो सूअरों के झुण्ड में पैठने दीजिये।। उसने उनसे कहा जाओ और वे निकल के सूअरों के झुण्ड में पैठे।। और देखो सूअरों का सारा झुण्ड कड़ाड़ पर से समुद्र में दौड़ गया और पानी में डूब मरा।।

-इ० म० प० ८। आ० २८ २९ ३१। ३२।।

(समीक्षक) भला! यहां तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं, क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थान से कभी नहीं निकल सकता। वे किसी पर न जाते ने संवाद करते हैं। ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं। जो कि महा जंगली हैं वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं। और उन सूअरों की हत्या कराई। सूअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा। और ईसाई लोग ईसा को पाप क्षमा और पवित्र करने वाला मानते हैं तो उन भूतों को पवित्र क्यों न कर सका? और सूअर वालों की हानि क्यों न भर दी? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अंग्रेज लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे? यदि मानते हैं तो भ्रमजाल में पड़े हैं।।७२।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

पुनर्जन्म

(तुरुंल अहमद कोतवाल आगरा से प्रश्नोत्तर-नवम्बर, १८८०)

२५ नवम्बर, सनू १८८० से १० मार्च, सनू १८८१ तक स्वामी जी आगरा में ठहरे। इसी बीच में एक दिन मौलवी तुफैल ग्रहमद नगर कोतवाल ने पुनर्जन्म पर आक्षेप किया कि यह गलत प्रतीत होता है, इसके मानने से कई आरोप उत्पन्न होते हैं। ईश्वर ऐसा अन्यायी नहीं कि जीवों को बार-बार उत्पन्न करे और उनके द्वारा अनुचित अपराध किये जावें । उदाहरणार्थ एक व्यक्ति मर गया, जो इस समय उसकी बेटी है अगले जन्म में वही उसकी पत्नी होवे ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बेटी और बाप का सम्बन्ध शरीर का है- आत्मा का नहीं। चूंकि आत्मा का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं इससे यह आक्षेप आत्मा पर लागू नहीं हो सकता।

इस पर उनकी शान्ति हो गई और वे फिर कोई उत्तर न दे सके ।

(लेखराम पृष्ठ ५२४)

हिन्दू और हिन्दुत्व

डॉ० विवेक आर्य

हिन्दू और हिन्दुत्व की परिभाषा देने के बहुत से प्रयत्न किये गए हैं और वे पूर्णतया सफल नहीं रहे। क्या हिन्दू एक धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक इकाई है ? कोई नहीं जानता कि हिन्दू शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है । तो भी प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू शब्द के भाव को अनुभव करता है। राजनैतिक बाजीगरों ने हिन्दू मस्तिष्क को प्रायः तर्क के जाल में फँसाने का प्रयत्न किया है और हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य खाई खोदने की चेष्टा की है। कभी-कभी उन्हें सफलता भी मिली, परन्तु यह सफलता अल्पकालिक या अस्थायी थी। इधर-उधर कभी किसी भूले-भटके व्यक्ति या उसके समुदाय ने हिन्दुत्व को ही नकारने का प्रयत्न किया, ऐसा आभास हम पाते हैं, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपनी भूल को अनुभव किया अथवा परिस्थिति-वश भिन्न मत रखने का उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया और वे फिर पुरानी परिपाटी पर आ गए। सिख, ब्रह्मसमाजी और आर्यसमाजी इसके आधुनिक उदाहरण हैं। जैनी, बौद्ध और कई अल्पसंख्यक वर्ग जैसे लिङ्गायत, शायद प्राचीन उदाहरण कहे जा सकते हैं। हिन्दुत्व का गौरव कहिए या गहनता अथवा उदारता कि शताब्दियों से इसको विभाजित करने वाली शक्तियाँ संगठित एवं उग्र रूप से कार्यरत हैं परन्तु हिन्दुत्व आज भी जीवित है और गतिशील है। इस धर्म के घोर शत्रु नहीं कह सकते कि हिन्दू धर्म मर गया है या इसमें मौत के कोई लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इसे, ऐसी हजारों विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा है जिनमें से एक ही किसी भी मानवीय समाज को नष्ट करने के लिए यथेष्ट थी। इसे असंख्य सामाजिक वा धार्मिक संघर्ष झेलने पड़े, जो किसी और के लिए, निश्चित रूप से, विनाशकारी सिद्ध होते। धन्य है, वह कुछ, जो कि इसमें है जिसकी न तो परिभाषा दी जा सकती है और न ही व्याख्या सम्भव है, जिसने इसे सभी विपत्तियों का सामना करते हुए और अनेक रोगों से जूझते हुए भी जीवित रहने की शक्ति दी आइए, अतीत में झाँकें, पिछली बीस सदियों में विश्व के विभिन्न भागों में मानव समाज को जिन परिवर्तनों में से गुजरना पड़ा है। उन महान् राष्ट्रों की तुलना करें जो समय-समय पर उत्थान और पतन को प्राप्त हुए। जरा विचार कीजिए उस उथल-पुथल का, छोटी या बड़ी, जो समय-समय पर इस विश्व में होती रही है, जिसने मुट्ठीभर लोगों को जीवन दान दिया परन्तु अधिकतर लोगों को मृत्यु दी ।

तभी हमारे लिए हिन्दुत्व में सही क्षति का अनुमान लगाना सम्भव होगा। इन सबके दबाव के होते हुए भी, आप पायेंगे कि हिन्दू क्षितिज पर, घोर अन्धकार में भी प्रकाश की रेखा अथवा आशा की किरण है जो कि घने तम से ग्रस्त निराशा वादी बुद्धि को भी उत्साह देती है और उन्नति के पथ पर ला खड़ा करती है। हिन्दू धर्म कभी मरा नहीं, प्रायः व्याधिग्रस्त हो जाता है और कभी-कभी इस के मरने की आशंका होने लगती है परन्तु यह कभी नहीं मरा । यहाँ तक कि, जब कभी इसका शरीर बाह्य रूप में ठण्डा पड़ने लगा और साँस रुकने लगी तब भी इसका हृदय धड़कता रहा और मानो किसी चमत्कार से शरीर में पुनः प्राण-संचार हो गया । ऐसा वज्र समान है यह हिन्दू जीवन । यदि इसमें कुछ दुर्बलतायें भी हैं तो आश्चर्य न करें क्योंकि आश्चर्य की बात तो यह है कि इनके होते हुए भी इसका अभी तक अस्तित्व बना हुआ है और यह जीवित है। हिन्दुत्व कितना सुदृढ़ है कि सहस्रों भूकम्प आये परन्तु आज भी यह उन्नत मस्तक किये अपने पथ पर अग्रसर है। निःसन्देह, भूतकाल में भारत शत-प्रतिशत हिन्दू राष्ट्र था। परन्तु अब दो-तिहाई ही हिन्दू रह गए हैं अर्थात् पैंतीस करोड़ में से चौबीस करोड़ । यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है। एक-तिहाई भाग खो बैठना थोड़ी क्षति नहीं, निराशा में डूबने के लिए पर्याप्त है। परन्तु इस चित्र का दूसरा पहलू भी है। हिन्दू धर्म को हर कदम पर विषमताओं का सामना करना पड़ा है। इसकी दृढ़ता का अनुमान उन राष्ट्रों तुलना से किया जा सकता है जिनके नाम मात्र ही इतिहास के पृष्ठों में अथवा पुरातत्त्व विभाग के दस्तावेजों में दफन हैं। बेबीलोन ऐसा गया कि फिर अस्तित्व में नहीं आया। धरती माँ ही बता सकती है कि मीडज् का क्या हुआ? कारथेज-जिसने महान् विचारक हनीबल को जन्म दिया था, आज की किसी एटलस में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। परन्तु पृथ्वीराज के घर दिल्ली और राणा प्रताप के घर चित्तौड़ के साथ ऐसा नहीं हुआ। वे आज, अतीत जैसे गौरवशाली न सही परन्तु राख के ढेर में उनकी चिनगारी अभी भी बाकी है। यहां धर्म एवं संस्कृति का ऐसा सम्बन्ध है जो भूतकाल को वर्तमान से जोड़ता है और भविष्य के लिए नये जीवन का निरन्तर संचार करता है।

हम हिन्दू धर्म को परिभाषित करने में नहीं उलझेंगे। नीरस तार्किकों को इसमें अपना मस्तिष्क लगाने दो। हमारे लिए तो इतना कहना ही यथेष्ट है कि प्रत्येक हिन्दू यह अनुभव करता है। कि वह हिन्दू है। उसमें कुछ ऐसी परम्परागत बात है जो दूसरों की तुलना में उसकी विशेषता प्रकट करती है। हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति की खोज करना समय और शक्ति का दुरुपयोग है। इसमें संशय नहीं कि हिन्दू और हिन्दुत्व शब्द हमारे देश के प्राचीन संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में नहीं हैं। एक सुयोग्य नागरिक के लिए सबसे अधिक प्रचलित शब्द आर्य है जिसका प्रयोग वेदों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म के साहित्य में भी किया गया है। वास्तव में यह वह शब्द है जिसका प्रयोग राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए करता या करती थी। निश्चित रूप से यह शब्द भद्रता एवं कुलीनता का द्योतक है और अपने में श्रेष्ठ एवं गम्भीर अर्थ लिये है। इसके प्रयोग करने वाले को जो भी भद्र एवं श्रेष्ठ था, तदनुसार चलने की प्रेरणा मिलती थी। इस शब्द की विशेषता है। जिसकी समानता का शब्द किसी मानवीय भाषा में नहीं है। परन्तु बहुत समय से व्यवहार में न आने के कारण 'हिन्दू' ने इसका स्थान ले लिया। सम्भव है यह किसी संस्कृत शब्द का तद्भव रूप हो, शायद सिन्धु अथवा इन्दु, जैसाकि कुछ विचारकों का मत है। यह भी सम्भव है कि व्याकरण के नियमों की खींच-तान करके इसे शुद्ध संस्कृत शब्द प्रमाणित कर दिया जाए। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह विदेशज शब्द भी हो सकता है। फारसी साहित्य में इस शब्द के इधर-उधर प्रयोग किये जाते रहे हैं जिसका भाव काला, अधार्मिक और चोर भी है। परन्तु यह प्रमाणित करना कठिन है कि मौलिक रूप से फारसी शब्द है या फारसी में इसका प्रारम्भिक अर्थ यही है। सम्भव है, फारस के लेखकों ने इस शब्द की गरिमा को कम करने के लिए इसका इस प्रकार से प्रयोग किया हो। जैसे ईसाई लेखकों द्वारा हीथन या पैगन शब्द का किया गया है। परन्तु जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, इस शब्द की व्युत्पत्ति से यहाँ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके स्थान पर आर्य शब्द लाने में हमें हर्ष होता परन्तु वह एक भिन्न बात है। सुस्पष्ट बात तो यह है कि 'हिन्दू' शब्द लम्बे काल से विस्तृत क्षेत्र में, देश और विदेश में प्रचलित रहा है और यही एकमात्र शब्द है जिसका वर्तमान काल में भी सुविधापूर्वक और निरापदरूप से प्रयोग हो सकता है, इसकी व्युत्पत्ति अथवा प्रारम्भिक भाव चाहे कुछ भी हो ।

हम नहीं चाहते कि हिन्दुत्व का विश्लेषण हमें अवांछित वाद-विवाद में खींच ले जाए और हमें हमारे उद्देश्य से ही भटका दे क्योंकि किसी सुन्दर वस्तु की चीरफाड़ उसके सौन्दर्य को ही नष्ट कर देती है और उसके स्थान पर कुछ भद्दा, कुरूप और भयावह शेष रह जाता है। यह भी सम्भव है कि विश्लेषण इसकी दुर्बलताओं को अतिशयोक्तिपूर्ण बढ़ावा दे और इसके गुणों को पीछे डाल दे। इसलिए विश्लेषण की चेष्टा कर हम इसे भ्रष्ट नहीं करेंगे। परन्तु बाद में वाद-विवाद में यदि आवश्यकता हुई तो हम इस शब्द के कुछ तत्त्वों का सावधानी से परीक्षण करेंगे। इस समय इसका प्रसंग ही पर्याप्त है।

आर्य समाज के बलिदान

श्री पंडित जयराम जी (कच्छ गुजरात)
लेखक :- स्वामी ओमानंद जी महाराज

(३० मई को बलिदान दिवस के अवसर पर विशेष रूप से प्रकाशित)

वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्यमार्ग पर डट जावें ।
परसेवा पर उपकार को कर निज जीवन सफल बना जावें॥

निज आन मान मर्यादा का , प्रभो ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया,बलिदान उसी पर हो जावें॥

श्री जयराम जी ब्राह्मण स्वर्णकार थे। उनका जन्म चैत्र कृष्णा १४ सम्वत् १९४६ में कच्छ मौरवी में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में इन्हें पितृस्नेह से वंचित होना पड़ा । इसके कुछ महीनों बाद अपनी माता के साथ जोधपुर आगये । यहीं बड़े हुए और काम सीखकर अपनी निजी दुकान कर ली । वे काम बहुत ईमानदारी के साथ करते थे अतः दुकान खूब चलने लगी ।

एक वर्ष जयराम जी कार्यवश करांची गये । वहाँ उन्होंने आर्यसमाज का उत्सव देखा तत्पश्चात् उनके मन में समाज का सदस्य बनने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वे जोधपुर आकर आर्यसमाज के मैम्बर बन गये । कुछ वर्षों बाद आप अन्तरंग सदस्य भी चुने गये । उनका जीवन नियमित था । नित्य चार बजे उठकर भगवान की प्रार्थना कर भ्रमण को जाते थे । पुनः आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर स्नानादि करके सन्ध्योपासना करने के बाद अपने आजीवका कार्य में प्रवृत होते थे। प्रति अमावस्या को गृह पर हवन भी नियमपूर्वक करते थे । उनके प्रभाव से मोहल्ले के बहुत से लड़के भी आर्यसमाजी हो गये थे ।

जिन दिनों हैदराबाद का सत्याग्रह छिड़ा उन दिनों आपका उत्साह प्रशंसनीय था । वे कहा करते थे कि नम्बर आने पर मैं भो हैदराबाद सत्याग्रह में अवश्य जाऊंगा । उन दिनों जोधपुर में उम्मेद कन्या पाठशाला (सोजती गेट) में सत्याग्रह सम्बन्धी सभायें हुआ करतीं थीं । वे भी वहाँ जाया करते थे ।

उस दिन सन् १९३९ की २९ मई थी । बम्बई सरकार की सत्याग्रह शिविर को शोलापुर से हटाने के विरोध में एक विराट् सभा कन्या पाठशाला में हुई थी । सभा समाप्ति के बाद अपने कुछ मित्रों के साथ जयराम जी घर को रवाना हुए । रास्ते में उन्हें पता चला कि उनके मुहल्ले के लड़कों तथा मुसल मानों में झगड़ा हो गया है । यह समाचार सुनते ही वे वहां पहुंचे और वहां से लड़कों को लेकर कुछ आगे चले होंगे कि पीछे से मुसलमान आये और उससे लड़ाई करने लगे । उन्होंने उनका सामना किया और वे भाग गये । इसके बाद बहुत से मुसलमान इकट्ठे होकर आये और पीछे से जयराम जी पर लाठियां बरसाने लगे । जयराम जी ने भी जमकर उनका सामना करना शुरू किया । कुछ देर तक सामना करने के बाद दुर्भाग्य वश जयराम जी की लाठी टूट गई । आक्रमणकारियों ने सिर में लाठियां मारकर उन्हें गिरा दिया और भाग गये । पीछे से जो लड़के सोजती गेट की तरफ चले गये थे वे उन्हें सम्हालने आये । उनके सिर में बेहद खून निकल रहा था । वे वहीं पर पट्टी बांधकर घर चले आये ।

घर पहुंचने पर मुहल्ले वालों ने उन्हें खून से भीगा हुआ देखा । वे रात को ही चोट दिखाने के लिये उन्हें सिटी पुलिस ले गये । वहां से वे रात के एक बजे अस्पताल में ले गये । वहाँ सवेरे ३० मई १९३९ तदनुसार ज्येष्ठ शुक्ला १२ सम्वत् १९९५ को उनका देहावसान हो गया। उनका शव लगभग २ बजे दिया गया । तब तक हजारों आदमी वहां एकत्रित होगये थे। उनकी अर्थी को सजाया गया, वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए उनकी श्मशान यात्रा निकली । वहां पर वैदिक रीत से अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। श्री जयराम जी का जीवन निर्भय, धर्मप्रेमी, परोपकारी व्यक्ति का जीवन है। उनका बलिदान आर्यजाति में रंग लाये, उन जैसे सुपुत्र घर घर पैदा हों, यही भगवान् से प्रार्थना है।

अग्निहोत्र विधान

-डॉ. सुशील कुमार वर्मा

अग्निहोत्र सम्बन्धित महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थ स्वामी जी द्वारा जिन ग्रन्थों में अग्निहोत्र का उल्लेख प्राप्त है, वे रचनाकाल अनुसार क्रमशः-

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सम्वत् १९३३)

२. पूंचमहायज्ञविधि (सम्वत् १९३९)

३. सत्यार्थ प्रकाश (सम्वत् १९३९)

४. संस्कार विधि (सम्वत् १९४०)

प्रथम तीन ग्रन्थों के अग्निहोत्र प्रकरण में अग्न्याधान, समिदाधान, जलसेचन आदि के मन्त्रों का कोई उल्लेख नहीं। यज्ञकुण्ड में अग्निप्रदीपन के पश्चात होम के केवल ये मन्त्र हैं। प्रातःकाल के "सूर्यो ज्योतिर आदि चार, सायंकाल के अग्निज्योतिर आदि चार, उभयकाल के ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा आदि चार, ओं आपो ज्योति आदि एक, और अन्त में सर्वं वै आदि पूर्णाहुति। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में केवल ओं भूरग्नये स्वाहा आदि चार मन्त्रों से होम तथा अधिक आहुतियों के लिये विश्वानिदेव और गायत्री मन्त्र से आहुतियाँ देना लिखा है। आजकल प्रचलित अग्निहोत्र संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण एवं गृहाश्रम प्रकरण का है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सर्वजनीन, सर्वकल्याणकृत सार्वकालिक, सार्वदेशिक प्रत्येक मनुष्य का नित्य कर्म के रूप में सर्वसाधारण अल्पव्यय और अल्पसमय में अग्निहोत्र कर सके। इस भावना के साथ देवयज्ञ (अग्निहोत्र) का विधान किया जोकि पंच महायज्ञों में दूसरे क्रम पर आता है।"

अग्निहोत्र (देवयज्ञ) की क्रम विधि

१. आचमनः

आचमन का अर्थ इस प्रकार लें आ+चम+अन

आ- अर्थात् पूरी तरह से, सब ओर से, सम्पूर्ण भाव से

चम्-चम् धातु खाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है।

अन-अर्थात् साधन अथवा आधार

अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा किसी पदार्थ को तृप्ति पर्यन्त खाया जाये वह क्रिया आचमन कहलाती है। अथवा तो आत्मा आनन्दित हो जाये।

आचमन क्यों किया जाये ?

शतपथ का वचन है कि मनुष्य जो असत्य भाषण करता है उसके कारण वह अपवित्र होता है। जल पवित्र है, जलों का आचमन करके वह व्रत ग्रहण करता है कि मैं पवित्र बनूँगा।

"पवित्रं वा आपः पवित्रपूतो व्रतमुपायानीत्"

जो मनुष्य सत्य का व्रत ग्रहण कर लेता है, वह मनुष्य कोटि से देवकोटि में आ जाता है-"सत्यमेव देवाः अनृत्यं मनुष्याः"

आचमन में वह शक्ति है जो मनुष्य को संस्कार ग्रहण करने योग्य बना देता है। असत्य भाषण आदि दुष्कर्मों के करने से मनुष्य के एक अन्दर ऐसा भाव पैदा हो जाता है जिसके कारण अर्थपूर्वक मन्त्रों का भी प्रभाव नहीं पड़ता। आचमन उस भाव को कुछ काल के लिए नष्ट कर देता है जिससे मन्त्र का प्रभाव मनुष्य के आत्मा पर पड़ जाता है। अतः उस कलुषित भाव को दूर करने के लिये आचमन सहायक होता है। जल शान्ति और पवित्रता का प्रतिनिधि है। मनुष्य का धर्म है कि वह हर महान कार्य के आरम्भ करने से पहले उस संकल्प पर शान्त चित्त होकर विचार करे, और यदि उसमें कोई थोड़ी सी भी अपवित्रता है तो उसे निकालकर बाहर कर दे। अन्यथा जल क्योंकि पवित्र करने वाला है। जल अन्दर जाकर कफ आदि की निवृत्ति करता हुआ ज्ञानतन्तुओं में शान्ति स्थापित करके पवित्र एवं शान्त करता है।

आचमन जल से क्यों ?

विद्युत को वेद में 'अप्सरा' नाम भी दिया गया है अर्थात् "अप्सु सरति" जल में रहने वाली। इसलिये जल में रहने वाली विद्युत हमें चेतना व स्फूर्ति देती है।

इसके अतिरिक्त जल शब्द 'ज' और 'ल' अक्षरों से बना है। 'जायते अस्मात् सकलं विश्वं स जः' अर्थात् जिससे सारा संसार उत्पन्न होता है, जो संसार को गर्भ में रखता है वह हिरण्यगर्भ 'ज' है। 'लीयते अस्मिन् सकलं विश्वं स लः' जिसमें सारा संसार लीन रहता है वह 'ल' है। अर्थात् परमपिता परमात्मा। इस प्रकार जो जल पिया जाता है, वह उस कारुणिक रूप परमात्मा की अनुभूति करवाता है, और उसी से हम आनन्दित होते हैं।

आचमन करते समय जल को ब्रह्म तीर्थ अर्थात् हथेली में जो जगह है लिया जाता है। उस समय ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि यह 'जल' परमपिता परमात्मा का स्वरूप है (जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त साथ रहने वाला) और हम ईश्वर को प्रत्यक्ष कर रहे हैं। "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि उस परम सत्ता की प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं। जल हृदय क्षेत्र तक जाये-क्योंकि इस जल में उस परम सत्ता की अनुभूति कर रहे हैं तो वह अनुभूति तो हृदय से ही हो सकती है। जल इतना न्यून न हो कि हृदय क्षेत्र तक भी पहुँच न पाये और न ही इतना अधिक हो कि वह पेट की पूर्ति कर दें और यह हथेली जिसे ब्रह्म तीर्थ कहा गया है, उसमें मात्र इतना ही जल आता है जो हृदय तक पहुँच पाये।

अग्निहोत्र करने में पहली क्रिया आचमन क्यों?

शतपथ ब्राह्मण का प्रथम वचन है।

"अमेदयो वै पुरुषो यदनृतं वदति,
तेन पूतिरन्तरतः ।
मेध्या वा आपः, मेध्यो भूत्वा
व्रतमुपयानीति"

अर्थात् वह पुरुष अमेध्य है अर्थात् यज्ञ करने के योग्य नहीं है। वह झूठ बोलता है और झूठ बोलने वाला याज्ञिक नहीं हो सकता। इसलिये इस पहली क्रिया में ही वह सत्य की याचना करता है और यह जल मेध्य है अर्थात् यज्ञमयी है। परमात्मा यज्ञ स्वरूप है, इसलिये मैं भी यज्ञमयी बन जाऊँ और इस पवित्र जल को ग्रहण कर उस उपास्य देव की उपासना करने का अधिकारी बन जाऊँ। यही आचमन की प्रतिज्ञा है, यदि आचमन नहीं तो यज्ञ नहीं।

आचमन ब्रह्मतीर्थ से मणि बन्ध की ओर-

वैसे तो जल हाथ के किसी कोने से ग्रहण किया जा सकता है परन्तु चूँकि ब्रह्मतीर्थ ऐसा स्थान है जहाँ नाड़ियों का केन्द्र है। इसलिये यदि आचमन ब्रह्मतीर्थ से मणिबन्ध की ओर किया जाये तो जल प्रभावकारी ढंग से हमारे शरीर को तरंगित करता है।

आचमन, मन्त्र पूर्ण होने पर करना चाहिए। मन्त्र बोलते समय अर्थ विचारपूर्वक आचमन करना ही सार्थक है। ऐसा अनुभव करें मानो उस परमपिता परमात्मा को प्रत्यक्ष देख रहे हों और वह जल द्वारा शरीर में शनैः शनैः प्रविष्ट हो रहा है। पूरा शरीर तरंगित हो उठेगा। रोम रोम में वह दिव्यता, आलोकिकता चमत्कारिक रूप से आपको आह्लादित कर देगी।

आचमन करते समय तीन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है और प्रत्येक मन्त्र से एक एक आचमन किया जाता है।

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।। (इससे पहला आचमन)

तैत्तिरीयाण्यक १०.३२

२. ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।। (तै०आ० १०.३५) इससे दूसरा आचमन

३. ओ३म् सत्यं यशः श्रीमयि श्रीः श्रयतां स्वाहा। इससे तीसरा आचमन हे अमृतरूपी प्रभो, आप नीचे का बिछौना हो, आप ऊपर का ओढ़ना हो, सत्य, यश अर्थात् कीर्ति श्री अर्थात् लक्ष्मी मेरे अन्दर आश्रित होकर रहें।

१) उपस्तरणम्-उपस्तरण का अर्थ है बिछौना। बिछौना जैसे आधार है, आश्रय है, उसी पर बैठकर व्यक्ति शान्ति एवं निश्चिन्तता का अनुभव करता है। इसी प्रकार वह परमेश्वर भी सम्पूर्ण जगत का आधार है, आश्रय है।

(२) अपिधानम्-अर्थात् आच्छादक, आवरण, ओढ़ना आदि। जिस प्रकार आवरण में मनुष्य सब ओर से सुरक्षित महसूस करता है उसी प्रकार उपासक भी सब ओर से परमात्मा को अनुभव करता हुआ सुरक्षित अनुभव करता है।

(३) श्री श्री का अर्थ है-शोभा, कान्ति, सेवा, प्रतिष्ठा, गौरव, समृद्धि, सौभाग्य, धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, श्रेष्ठता आदि।

उपासक परमात्मा से इन गुणों एवं ऐश्वर्य की प्रार्थना करता है।

यदि हम अमृत का अर्थ जल लें, तो यह जल भी सत्य और यश की रक्षा करने वाला है। वेद में जल का नाम ही सत्य है, जल का आचमन करते हुए यह भावना जागृत होती है कि जैसे पवित्र जल सत्यमय और अपने गुणों के कारण यशस्वी है तो हम भी ऐसे सत्यमय और यशस्वी हों।

दूसरों अर्थों में अमृत क्या है इसकी घोषणा तृतीय आचमन में है-सत्यं, यशः एवं श्रीः

सत्य-मनुष्य के मस्तिष्क में तर्क द्वारा निर्णीत सिद्धान्त सत्य है, यदि वह मस्तिष्क तक ही सीमित है तो सत्य कहलायेगा, यश नहीं। जब इस निर्णीत सत्य को हृदय स्वीकार कर लेगा तभी वह यश रूप धारण कर लेगा। यश शब्द का अर्थ है व्यापत हो जाना, छा जाना। व्यक्ति के किसी गुण का लोक हृदय तक छा जाना ही यश है। यह सत्य का ही दूसरा रूप श्रद्धा है-मस्तिष्क में सत्य और हृदय में वही श्रद्धा रूप। श्रद्धा से आविष्ट व्यक्ति जब उसे आचरण का रूप दे देता है तभी सत्य श्री का रूप धारण कर लेता है।

उद्यान में लगी कली सत्यरूप है, खिला हुआ फूल श्री रूप है और दिशाओं में फैली सुगन्ध लोक हृदय पर छा जाने से यश रूप है-सत्यं, यशः और श्रीः ।

सामाजिक दृष्टि से इस पर विचार करें तो समाज के मस्तिष्क ब्राह्मण में जो विचार प्रत्याक्षादि प्रमाणों से निर्णीत होता है उसे सत्य कहते हैं। यश और श्री की कामना न करते हुए सत्य को अमृत बना देना ब्राह्मण का कर्तव्य है। अर्थात् मान अपमान को दूर, यश श्री से दूर सत्य का पोषक और रक्षक-सत्य को अमृत बनाने वाला ब्राह्मण।

क्षत्रिय यश को अमृत बनाता है। नाम की कामना उसके लिये अमृत है। अपने हृदय में स्थापित करके, पश्चात लोक हृदय तक स्थापित कर दे।

वैश्य-इस सत्य को मूर्त रूप देने के लिये जीता जागता रूप देने के लिये धन की आवश्यकता होती है। वैश्य अपने धन द्वारा जब सत्य और यश को आश्रय देता है तभी उसका धन श्री कहलाता है। अन्यथा धन लक्ष्मी है दौलत पर श्री नहीं। क्योंकि 'श्री' शब्द 'श्रिश्रये' धातु से बना है जिसका अर्थ है आश्रय देना। इसलिये नामकरण संस्कार में बालक को आशीर्वाद देते हुए जहाँ वर्चस्वी, तेजस्वी होने की बात कही जाती है वहाँ श्रीमान होने की बात भी कही गई। जहाँ ब्रह्म वर्चस्वी बनाकर ब्राह्मण बनाने की कामना निहित है, तेजस्वी बनाकर क्षत्रिय बनाने की भावना है, वहीं श्रीमान कहकर वैश्य बनाने की भावना स्पष्ट है। इसीलिये उसे लक्ष्मीवान न कहकर श्रीमान कहा।

सारांश यह कि सत्य से यश प्राप्त होता है, और यश से सम्पत्ति प्राप्त होती है और वही सम्पत्ति दूसरों का आश्रय दे तो ही श्री।

स्वाहा स्वाहाकृत्यः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागारेहति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति ।। निरुक्त० ३.२०

१. सु आहेति वा- सब मनुष्यों को अच्छा, मीठा, कल्याण करने वाला, और प्रियवचन सदा बोलना चाहिये।

२. स्वा वागाहेति वा- मनुष्यों को यह निश्चय करके जानना चाहिये कि जैसी बात उनके ज्ञान के बीच में वर्तमान हो, जीभ से भी सदा वैसे ही बोलें, उसके विपरीत नहीं।

३. स्वा प्रेहित वा- सब मनुष्य अपने ही पदार्थ को अपना कहें, दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं अर्थात् जितना धर्मयुक्त पुरुषार्थ से उनको पदार्थ प्राप्त हो उतने में ही सदा सन्तोष करें।

४. स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा- अर्थात् सर्वदिन अच्छी प्रकार सुगन्धादि द्रव्यों का संस्कार करके सब जगत के उपकार करने वाले होम को किया करें और स्वाहा शब्द का यह भी अर्थ है कि सब दिन मिथ्यावाद को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिये।

संक्षेप में "सत्यनिष्ठापूर्वक त्याग व समर्पण की भावना और हवि" का प्रतीक है "स्वाहा" शब्द।

आचमन तीन बार क्यों-

आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक शान्ति के लिये तीन बार आचमन किया जाता है।

अंग स्पर्श-

ओं वाङ्.म आस्येऽस्तु ।। इस मन्त्र से मुख

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।। इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इस मन्त्र से दोनों आँखें।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।। इस मन्त्र से दोनों कान।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।। इस मन्त्र से दोनों बाहु।

ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु ।। इस मन्त्र से दोनों जंघा और ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा में सहसन्तु।। इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना।

संस्कार विधि (सामान्य प्रकरण)

इस सम्बन्ध में पारस्कर गृह्यसूत्र में इस प्रकार का उल्लेख है। वाङ्ग आस्ये। नसोः प्राणः। अक्ष्णोः चक्षुः। बाह्वोर्बलम्। ऊर्वोरोजः। अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहेति।।

पारस्कर के उक्त सूत्र का वैदिक मूलमन्त्र अथर्ववेद से है।

पारस्कर सूत्र के टीकाकार कर्क, जयराम, हरिहर गदाधर एवं विश्वनाथ के अनुसार-

हर एक के साथ 'अस्तु' और 'मे' लगाना चाहिये और अन्तिम वाक्य में तनूस्तन्वा के साथ 'सन्तु' लगाया जायेगा। अतः स्वामी जी ने अंग स्पर्श वाक्य इस प्रकार लिखे हैं।

१. ओं वाङ्ग आस्येऽस्तु-

हे प्रभु मेरे मुख में प्रशस्तवाणी हो। अर्थात् मुख में वाणी को जीवित बनाओ, यशस्वनी और बलवान बनाओ। मेरी वाणी सत्यवादिनी प्रियवादिनी और शुभवादिनी हो। कभी कठोर कटु, असत्य, अशुभ न बोलें। मिथ्या विवाद न करें। सबको शान्त और सन्तुष्ट करने वाली हो। महाभारत का युद्ध कटु वचनों के परिणाम से ही हुआ।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः।।

२. ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु-

क्रमशः पृ. ५.....

हे परमात्मन् मेरे नासिका छिद्रों में प्राण हों। हे प्रभो मेरे प्राणों को सुरक्षित करो। श्वास तेरे अर्पण हो, दूसरों के प्राण तथा स्वास्थ्य रक्षा का बल दो। नासका को दो बार छूने का विधान है अर्थात् एक तो घ्राण शक्ति (सूँघने की क्षमता) बनी रहे और दूसरे प्राणों का आवागमन अविघ्नित रूप से होता रहे। मुझे प्राणशक्ति न छोड़े और न ही अपानशक्ति छोड़े ''मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परागात्''

''प्राणापानौ मा मा हासिष्टम्

अर्थात् हे प्राण अपानो मुझे मत छोड़ो।

३. ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु-

हे परमपिता परमात्मा मेरे नेत्रों में दृष्टि शक्ति और भद्र दृष्टि हो। आप मेरी आँखों को विश्वामित्र बनाओ, इन्हें लज्जा से भर दो। प्रातःकालीन सूर्य हमें चक्षु शक्ति प्रदान करे। आँखों को दो बार स्पर्श का अर्थ है कि आप हमें दृष्टि शक्ति दें और वह दृष्टि शुभ दृष्टि हो, इनके द्वारा मित्रता एवं प्रेम भरी दृष्टि से देखना ही अभिप्रेत हो।

'भद्रं पश्मेयाक्षभिर्यजत्रा' इसी प्रकार हम सभी एक दूसरे को मित्र की आँख से देखा करें ''मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे-

४. ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु -

हे प्रभो! मेरे दोनों कानों में श्रवण शक्ति हो। कान हमें परमात्मा ने भद्र श्रवण के लिये दिये हैं। अतः हम भद्र ही श्रवण करें। "भद्रं कर्णोभिः शृणुयाम देवाः हे परमपिता परमात्मा आजीवन हमारी श्रवण शक्ति अक्षुण्ण तथा तीव्र रहें और भद्रश्रवण करते रहें। वे दीन दुखियों की पुकार सुनने वाले हों।

५. ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु-

मेरी दोनों भुजाओं में बल हो। हे प्रभु दूसरों की सहायता एवं रक्षा के लिये मेरी भुजाओं में बल हो। आततायियों के विनाश के लिये एवं शत्रुओं के संहार के लिये मेरे बाहु शक्तिशाली हों।

६. ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु-

मेरी दोनों जंघाओं में ओज हो। इन जंघाओं में स्थिर रहने और चलने की शक्ति हो । मेरी सशक्त जंघायें मुझे सन्मार्ग पर ले जायें 'असतो मा सद्गमयः' ।

७. ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु-

मेरे शरीर के अंग प्रत्यंग और शरीर अक्षत रहे। वे अंग मेरे शरीर के साथ स्वस्थ रूप से विद्यमान रहे। यहाँ छोटे बड़े सभी अंगों जिनका उल्लेख ऊपर मन्त्रों में नहीं किया गया वे भी पूर्ण स्वस्थ रहें। जब तक यह शरीर रहे सभी अंग प्रत्यंग स्वस्थ बने रहें। जब तक हमारे अंग ठीक स्वस्थ और पवित्र रहेंगे तभी सब सुकृत्य हो पाँयेगे।

अंग स्पर्श जल से क्यों ?

वेदों में जलों को शारीरिक दोषों और मानसिक पापों का अपहर्ता कहा गया है। जलों में ओषधि है। ''अपस्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्''

जल में विद्युत होती है। वेद का वचन है ''घृतस्य धाराः समधिो वसन्तः। जल की धारायें विद्युत की समिधायें बन जाती हैं। इसीलिए विद्युत का संचार अंगों पर होता है। इसके अतिरिक्त वेदों में 'आपो हिष्ठा मयोभुवः ता न ऊर्जे दधातन 'आपः शिवतमः ते न कृण्वन्तु भेषजम्' ।

अतः भैषज्यरूप, शीतलता, चेतना व स्फूर्ति प्रदाता जल को ऋषियों ने चुना और अंग स्पर्श का विधान उचित व अपरिहार्य माना।

अंग स्पर्श दाहिने हाथ से-

वेद में कहा गया है 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते' कर्तृतव्यता मेरे दाहिने हाथ में है। इसके लिये दक्षता, कुशलता एवं निपुणता चाहिये और वह दक्षता दक्षिण में है। यज्ञ का ब्रह्मा दक्षिण दिशा में बैठता है और वह भी यजमान के दाहिने बाजू की तरफ।

सन्ध्या प्रकरण में दक्षिण दिशा के रक्षक पितर अर्थात् विद्वान् जन हैं।

वीर्यं वै दक्षिणो बाहुः । (शतपथ) Helping Hand को Right Hand ही कहा जाता है।

इसलिये सभी अंग स्पर्श दक्षिण हाथ से करने का संकेत है।

अंग स्पर्श केवल मध्यमा और अनामिका से-

आत्मा और स्थूल शरीर में जो माध्यम बनकर काम करता है वह है अन्तःकरण चतुष्टमय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) बुद्धि निर्णय करती है और इन्द्रियों द्वारा प्रदत्त भोग व सुखदुखादि आत्मा को यही बुद्धि प्राप्त करवाती है। अतः स्थूल शरीर और आत्मा में बुद्धि माध्यम है और हमारी उँगलियों में मध्यमा बुद्धि का प्रतीक है। और मध्यमा के साथ अनामिका है अर्थात् जिसका कोई नाम नहीं और यह आत्मा की प्रतीक है। बुद्धि आध्यात्मिक होकर यज्ञ कर्म करती है और उसके साथ अनाम आत्मा जुड़ जाती है। इसलिये अंग स्पर्श मध्यमा (बुद्धि) और अनामिका (आत्मा) से किये जाते हैं। इसी प्रकार कनिष्ठा- ''कणे कणे तिष्ठतीति कनिष्ठः कनिष्ठोवा'' अर्थात् जो कण कण में रहता है वह है परमात्मा इस प्रकार बुद्धि (मध्यमा) आत्मा (अनामिका) के सहचर्य से आध्यात्मिक भाव से ओतप्रोत होकर परमात्मा (कनिष्ठा) को प्राप्त करती है। इस प्रकार यदि मध्यमा (बुद्धि) अनामिका की (आत्मा) की ओर जायेगी तो कनिष्ठ (परमात्मा) को प्राप्त करेगी और यदि तर्जनी की ओर जायेगी तो काम, क्रोध, लोभ, मोह में आत्मा को फँसा देगी। इसलिये ईश्वर की उपासना करते समय मध्यमा और अनामिका से अंग स्पर्श किया जाता है ऐसा विधान ऋषियों ने इसी लिये बनाया।

ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना मन्त्राः

संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में स्वामी जी लिखते हैं ''सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करें और सब लोग उस में ध्यान लगाकर सुनें और विचारें।'' विकल्प शुरू हो जाते हैं। उन्हें शान्त करने हेतु ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' वाले जैसे ही हम प्रार्थना आरम्भ करते हैं तो हृदय में नास्तिकता पूर्ण संकल्प मन्त्र प्रारम्भ हो जाते हैं। (यदि ये संकल्प विकल्प कुछ क्षण के लिये भी शान्त हो जायें तो वह व्यक्ति उपासना में बैठ जाता है।)

१. पहला मन्त्र

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुवः ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ।। यजु० ३०.३

ऋषि भाष्यम् – हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्रऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये जो कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ है वह सब हमको प्राप्त कीजिये।

इस मन्त्र में मुख्यतः बताया गया कि जब तक मनुष्य में से बुराइयाँ दूर नहीं होतीं तब तक अच्छाईयाँ नहीं आ सकतीं। यहाँ 'दुरितानि' बहुवचन में है और 'भद्र' एक वचन। मनुष्य में बुराईयाँ बहुत है और यदि उसके जीवन में एक भी भद्र भाव आ जाये, अच्छाई प्रवेश कर जाये तो वह एक गुण है ही अन्य भद्र भावों का रास्ता खोल देगा। और यहाँ पहले बुराइयों को हटाने की प्राथमिकता दी गयी है, फिर भद्रभाव। क्योंकि पात्र में कुछ डालने से पहले उसे साफ करना आवश्यकता होता है इसी प्रकार जब तक बुराईयाँ दूर नहीं होंगी भद्रभाव नहीं आ सकते। वैसे भी प्रार्थना में मांगी हुई वस्तु में बहुवचन होना घृष्टता का सूचक है और एकवचन का प्रयोग प्रेम और समर्पण का प्रतीक है। और यह मन्त्र उपासक द्वारा अपनी प्रार्थना के विषय को स्थापित करने हेतु है।

२. दूसरा मन्त्र-

ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। यजु० १३.४

ऋषि भाष्य जो स्वप्रकाश-स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं। जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था। जो सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था। वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है हम लोग सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

यह मन्त्र अभिमान दूर करने हेतु है क्योंकि मनुष्य जब भद्र की प्रार्थना (पहले मन्त्र में) करता है तो उसके हृदय में अभिमान जागृत हो जाता है कि मैं किसी से क्यों माँगू। परन्तु जब उस परमात्मा का विराट् रूप सामने आता है। उस प्रभु की सत्ता, सभी का स्वामी, अधिष्ठाता, अपने गर्भ में सभी ब्राह्माण्ड को समाये हुए प्रतीत करता है, उसका अभिमान चकनाचूर हो जाता है और वह कह उठता है ''कस्मै देवाय हविषा विधेम''।

यहाँ स्वामी जी ने ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' का अर्थ किया है। उस परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

हवि का अर्थ यहाँ उन्होंने घृत, आज्यम्, सर्पिः आदि नहीं किया अपितु अर्थ किया कि उपासक के हृदय का प्यार ही हवि है। और उपासना प्रकरण में इस प्रेम से अधिक सुन्दर क्या अर्थ होगा? इसी प्रकार ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास के अतिरिक्त सहारा अथवा पतवार क्या होगा। यही योगाभ्यास उपासक को प्रभु के साथ योग कराता है और प्रभु प्राप्ति प्रकरण में सबसे उचित व्याख्या है। अतः उपासक अपना अभिमान दूर करके उस परमसत्ता को स्वीकार करता हुआ अपने हृदय प्रेम की आहुति देता है।

३. तीसरा मन्त्र -

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। यजु० २५. १३

ऋषि भाष्यम्- जो आत्मज्ञान का दाता शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्षसुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है। हम लोग उस सुख स्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

जब मनुष्य उस परमात्मा का विराट् स्वरूप देखता है, तो वह अभिमान रहित हो जाता है। उस परमेश्वर में उस के प्रति दृढ़ विश्वास हेतु स्वामी जी ने इस मन्त्र का विनियोग किया। ताकि वह मनुष्य समझ पाये कि वह ''आत्मदा बलदा'' है। वही दाता है, वही देने वाला है। वही आत्मज्ञान का दाता है। और स्वामी जी ने इसीलिये अर्थ किया कि वह शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने वाला है। और सारा विश्व उसकी उपासना करता है। क्योंकि ''महाजना येन गतः स पन्थाः''। तू कोई नया कार्य नहीं करने चला। बड़े बड़े विद्वान्, अधिक योग्यता वाले ज्ञानी पुरुष सभी उसकी उपासना करते हैं।

उस प्रभु की छाया ही अमृत है अन्यथा मौत ही मौत। उस प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं, कोई मार्ग नहीं, कोई साधन नहीं।

''तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय''

जब उपासक को यह समझ आ जाती है तभी वह कहता है ''कस्मै देवाय हविषा विधेम।'' यहाँ स्वामी जी के मन्त्र विनियोग की विलक्षणता और हवि के अर्थ की उच्च भावना प्रकट होती है। उन्होंने उपासक को यह बता दिया कि आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये आत्मा की आहुति आवश्यक है, और तीनों प्रकार के बल की प्राप्ति के लिये अन्तःकरण की आहुति अपेक्षित है। क्योंकि अन्तःकरण की दुर्बलता दूर किये बिना किसी प्रकार का बल प्राप्त नहीं हो सकता। शरीर, आत्मा और समाज के बल के लिये अन्तःकरण का बलवान होना अति आवश्यक है। ये तीनों बल मिलकर ही वास्तविक बल कहलाता है। क्योंकि शारीरिक बल के होने पर भी आत्मिक बल के अभाव में मनुष्य बलवान होते हुए भी भीरु और कायर होता है और बलवान भी दुर्बल से पराजित हो जाता है। और आत्मिक बल होते हुए भी शारीरिक बल के अभाव में मनुष्य रोगी रहकर कुछ नहीं कर सकता।

४. चतुर्थ मन्त्र-

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूवः ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। यजु०२३.३

ऋषि भाष्यम्- जो प्राणवाले और अप्राणीरुप जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही राजा विराजमान है जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है हम उस सुखस्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके भक्ति विशेष करें।

इस मन्त्र में मनुष्य को एहसास करवाया गया है कि वह प्रभु सब प्राण धारियों का स्वामी है। जब तक प्राण है वह उसकी सत्ता को स्वीकार करता है और जब प्राणों का विच्छेद हो जायेगा तो प्रार्थना उपासना की आवश्यकता भी नहीं। रहेगी। क्योंकि मुक्त अवस्था में ही प्राण का जीव से सम्बन्ध विच्छेद होता है। उसे पता है कि यह संसार स्थायी निवास नहीं है, इसलिये अनित्यता पर विचार कर और उसकी उपासना कर। वह परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का एक ही स्वामी है। वह समस्त चराचर जगत का मालिक है, अधिष्ठाता है। इतना जानने के पश्चात वह उपासक कहता है ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' और स्वामी जी ने प्रकरणानुसार इसका अर्थ किया है कि हम अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके भक्ति विशेष करें। हे उपासक तू अपनी

क्रमशः पृ. ७.....

पृष्ठ १ का शेष.....

विधर्मियों में सबसे पुराना अनुवाद शहजादा दारा शिकोह का किया हुआ फारसी भाषा में है।

शंकराचार्य जी की टीका की विशेषता यह है कि उन्होंने उपनिषद के मंत्रों को अद्वैतपरक लगाया है। इसके विपरीत श्री रामानुजाचार्य उसे विशिष्ट अद्वैतपरक और माधवाचार्य उसे द्वैतपरक समझते हैं।

वास्तव में उपनिषद क्या है इसका उत्तर उपनिषद के अक्षर से ही प्राप्त होता है।

वर्तमान ईशोपनिषद यजुर्वेद की काव्य शाखा का ज्यों का त्यों ४०वाँ अध्याय है। इस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा (ब्रह्मविद्या) वेद मूल है। उपनिषदों में 'अपरा' विद्या का ही उपदेश है।

जब हम इस प्रकार ब्रह्म विद्या को (परा) विद्या को भी वेद मूलक कहते हैं तब स्वाभाविक रूप से हमारे सम्मुख मुंडक उपनिषद का वाक्य १-१-५ आता है।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा
कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ
परा पया तदक्षरमधिगम्यते।। मुण्ड०-१-१५।।

अर्थ--उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शिक्षा स्वर और वणार्दि का उच्चारण विधि कल्प जो वेद मंत्रों के विनियोग पूर्वक कर्मकांड का विधान करता है शब्द शास्त्र (व्याकरण) निरुक्त जिसमें वेद में आए शब्दों का निर्वचन किया गया है। छन्द शास्त्र ज्योतिष विद्या ये अपरा है और (परा) वह विद्या है जिससे वह अक्षर अविनाशी (ब्रह्म) जाना जाता है।

उपनिषदें ग्यारह (११) हैं (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) ऐतरेव (८) तेत्तिरीय (९) श्वेताश्वर (१०) छान्दोग्य (११) वृहदारण्यक।

ईशोपनिषद मैं ब्रह्मविद्या का मूल मौजूद है इसको चार भागों में बांटा जा सकता है-

१- प्रथम भाग इसके ३ (तीन) मंत्र है जिनमें पांच कर्तव्यों का विधान किया गया है।

१. ईश्वर प्रत्येक स्थान में मौजूद अर्थात सर्वव्यापक समझना।

२. संसार की समस्त वस्तुओं को ईश्वर की मान कर भोग हेतु उपयोग करना।

३. किसी के (ईश्वर के) धन को अपना न समझना।

४. अन्तरात्मा के विरूद्ध आचरण न करना।

२- दूसरे भाग में ४, ५, ६, ७, ८ (पांच) मंत्र हैं। जिनमें ब्रह्मविद्या का वर्णन है।

३- तीसरा भाग ९, १०, ११, १२, १३ (पांच) मंत्र हैं। इनमें मनुष्यों के कर्त्तव्यों का विधान किया गया है कि किस प्रकार मनुष्य ब्रह्मविद्या प्राप्त करे।

४- चौथे भाग में वेद कि इस महत्वपूर्ण शिक्षा का भाव यह है कि मनुष्य को अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए कि जब अमर आत्मा और विनस्वर शरीर के वियोग का समय आवे तब वह ओ३म् का उच्चारण कर सके।

उपनिषदों में त्रैतवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है जिसके अनुसार प्रत्येक कार्य के लिए तीन पदार्थों का होना आवश्यक है।

१. कर्त्ता- अर्थात कार्य को करने वाला।

२. पदार्थ- अर्थात वह वस्तु जिसके उपयोग से कार्य संपन्न किया जा सके।

३. भोक्ता- अर्थात कार्य जिस हेतु किया गया।

आध्यात्मिक भाषा में कर्त्ता को निमित्त कारण और पदार्थ को ''उपादान कारण'' तथा भोक्ता को ''साधारण कारण'' कहा जाता है।

निमित्त कारण- सृष्टि की रचना करने वाला एकमात्र ईश्वर है इस उपनिषद का आठवां मंत्र स्पष्ट रूप से ईश्वर के गुणवाचक नामों का वर्णन करता है।

जिसमें कहा गया है कि- ईश्वर सर्वत्र व्यापक है जगदुत्पादक शरीर रहित, शारीरिक विकार रहित, नाड़ी और नस के बंधन से रहित, पवित्र पाप से रहित, सूक्ष्मदर्शी, ज्ञानी, सर्वोपरि वर्तमान स्वयं सिद्ध अनादि प्रजा (जीव) के लिए ठीक-ठीक कर्मफल का विधान करता है।

उपादान कारण- श्वेतास्वर उपनिषद के अध्याय ४ मंत्र ५ में कहा कि एक अनादि सत्व रज तमोगुण रूप प्रकृति अपने जैसी बहुत प्रजाओं को उत्पन्न करती है। अतः कारण रूप प्रकृति ही सृष्टि की रचना का उपादान कारण है।

अजामेकां.....अजोऽदन्यः।। श्वेता...४-५

साधारण कारण- इसी मंत्र में कहा गया है कि एक ही अनादि जीवात्मा भोगता हुआ उसके साथ लिपटता है और फंसता है।

इस मंत्र में परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीनों का वर्णन है। अर्थात ईश्वर जीव प्रकृति तीन पदार्थ जगत के कारण अनादि हैं।

इसमें वेद प्रमाण-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।

ऋ० १-१६४-२०

अर्थ-ब्रह्म और जीव दोनों सुंदर पंखों वाले सदृश, व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त और एक ही वृक्ष का सब ओर से आश्रय करके बैठे हैं। उन दोनों में से ब्रह्म से दूसरा उस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप कर्मों के फलों को अच्छे प्रकार स्वाद लेकर भोगता है और दूसरा (परमात्मा) कर्मों के फलों को न भोगता हुआ सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है अथवा सब ओर से जीव के कर्मों को साक्षी रूप देखता है।

उस वेद मंत्र में कहा है कि जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न रूप अनादि है ईश्वर प्रकृति में व्यापक हो रहा है और जीव भी उसमें लिप्त हुआ है।

प्रथम पृष्ठ पर जिन तीन वादों का उल्लेख किया है वह निम्नलिखित हैं--

१. अद्वैतवाद- अर्थात ईश्वर एक ही है दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवा, छठा, सातवां, आठवां, नवा, दसवां नहीं है। सृष्टि का रचयिता पालनकर्ता और संहारकर्ता है।

२. विशिष्ट अद्वैतवाद- अर्थात ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। संपूर्ण सृष्टि ईश्वर का ही विकृत रूप है।

यह वाद इसलिए असत्य है क्योंकि विज्ञान के नियमानुसार कार्य में कारण के गुण विद्यमान रहते हैं अतः यदि संपूर्ण संसार ईश्वर का ही रूप है तो उसमें ईश्वर के गुण होने चाहिए।

३. द्वैतवाद इस सिद्धांत के विद्वान जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं और ईश्वर और प्रकृति दो को ही अनादि मानते हैं। परंतु जीव अल्पज्ञ है परिछिन्य है, एक देशीय है। शरीर धारण करता है और पाप पुण्य कर्मों का फल भोगता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान सत् चित आनंद स्वरूप न्यायकारी दयालु अजन्मा अनन्त निर्विकार अनुपम सर्वेश्वर पालक सर्वांतर्यामी अजर अमर नित्य पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है। अतः यह सिद्धांत भी असत्य है।

चलभाष-९८९६१८०१९६

महात्मा गाँधी और गौरक्षा

डॉ० विवेक आर्य

१९४७ के दौर की बात है। देश में विभाजन की चर्चा आम हो गई थी। स्पष्ट था कि विभाजन का आधार धर्म बनाम मजहब था। भारतीय विधान परिषद के अध्यक्ष डा० राजेंद्र प्रसाद के पास देश भर से गौवध निषेध आज्ञा का प्रस्ताव पारित करने के लिए पत्र और तार आने लगे। महात्मा गाँधी ने २५ जुलाई की प्रार्थना सभा में इसी इस विषय पर बोलते हुए कहा-

''आज राजेंद्र बाबू ने मुझ को बताया कि उनके यहाँ करीब ५० हजार पोस्ट कार्ड, २५-३० हजार पत्र और कई हजार तार आ गये हैं। इन में गौ हत्या कानूनन बंद करने के लिये कहा गया है। आखिर इतने खत और तार क्यों आते हैं? इन का कोई असर तो हुआ ही नहीं है। हिंदुस्तान में गोहत्या रोकने का कोई कानून बन ही नहीं सकता। हिन्दुओं को गाय का वध करने की मनाही है इस में मुझे कोई शक नहीं हैं। मैंने गौ सेवा का व्रत बहुत पहले से ले रखा है। मगर जो मेरा धर्म है वही हिंदुस्तान में रहने वाले सब लोगों का भी हो यह कैसे हो सकता है? इस का मतलब तो जो लोग हिन्दू नहीं हैं उनके साथ जबरदस्ती करना होगा। हम चीख-चीख कर कहते आये हैं कि जबरदस्ती से कोई धर्म नहीं चलाना चाहिये। जो आदमी अपने आप गोकशी रोकना चाहता उसके साथ में कैसे जबरदस्ती करूँ कि वह ऐसा करें? अगर हम धार्मिक आधार पर यहाँ गौहत्या रोक देते हैं और पाकिस्तान में इसका उलटा होता है तो क्या स्थिति रहेगी? मान लीजिये वे यह कहें कि तुम मूर्तिपूजा नहीं कर सकते क्योंकि यह शरीयत के अनुसार वर्जित है। ... इसलिए मैं तो यह कहूंगा कि तार और पत्र भेजने का सिलसिला बंद होना चाहिये। इतना पैसा इन पर बेकार फैंक देना मुनासिब नहीं है। मैं तो आपकी मार्फत सारे हिन्दुस्तान को यह सुनाना चाहता हूँ कि वे सब तार और पत्र भेजना बंद कर दें। (हिंदुस्तान २६ जुलाई, १९४७)''

''हिन्दू धर्म में गोवध करने की जो मनाई की गई है वह हिन्दुओं के लिए है सारी दुनियाँ के लिए नहीं। (हिंदुस्तान १० अगस्त १९४७)''

'' अगर आप मजहब के आधार पर हिंदुस्तान में गो कशी बंद कराते हैं तो फिर पाकिस्तान की सरकार इसी आधार पर मूर्तिपूजा क्यों नहीं बंद करा सकती! (हरिजन सेवक १० अगस्त १९४७)''

गाँधी जी के गौ वध निषेध सम्बंधित बयानों की समीक्षा आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान पं धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ने सार्वदेशिक पत्रिका के अगस्त १९४७ के सम्पादकीय में इन शब्दों में की-

माहात्मा जी के उपर्युक्त वक्तव्य से हम नितांत असहमत हैं। प्रजा जिस बात को देशहित के लिए अत्यावश्यक समझती है क्या अपने मान्य नेताओं से पत्र, तार आदि द्वारा उस विषयक निवेदन करने का भी उसे अधिकार नहीं है? क्या देश के मान्य नेताओं का जिन के हाथों स्वतन्त्र भारत के शासन की बागडोर आई है यह कहना कि प्रजा द्वारा प्रेषित हजारों तारों और पत्रों का कोई प्रभाव तो हुआ ही नहीं सचमुच आश्चर्यजनक है। क्या प्रजा की माँग की ऐसी उपेक्षा करना देश के मान्य नेताओं को उचित है? हिंदुस्तान में गौहत्या रोकने का कोई कानून बन ही नहीं सकता। ऐसा महात्मा जी का कहना कैसे उचित हो सकता है? क्या विधान परिषद् की सारी शक्ति महात्माजी ने अपने हाथ में ले रक्खी है जो वे ऐसी घोषणा कर सकें? यह युक्ति देना कि ऐसा करने से हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे लोगों पर जबर्दस्ती होगी सर्वथा अशुद्ध है। इसके आधार पर तो किसी भी विषय में कोई कानून नहीं बनना चाहिये क्योंकि बाल्यविवाह, अस्पृश्यता, मद्यपान निषेध, चोरी निषेध, व्यभिचार निषेध आदि विषयक किसी भी प्रकार के कानून बनाने से उन लोगों पर एक तरह से जबर्दस्ती होती है जो इन को मानने वा करने वाले हैं। जिस से समाज और देश को हानि पहुँचती है उसे कानून का आश्रय लेकर भी अवश्य बंद करना चाहिये। स्वयं महात्मा गांधीजी की अनुमति और समर्थन में गत वर्ष ११ फरवरी को वर्धा में जो गौरक्षा सम्मलेन हुआ था उसमें एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया था कि 'इस सम्मेलन का निश्चित विचार है कि भारत के राष्ट्रीय धन के दृष्टीकोण से गौओं, बैलों और बछड़ों का वध अत्यंत हानिकारक है इसलिए यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि गौओं, बछड़ों और बैलों का वध कानून द्वारा तुरंत बंद कर दिया जाए। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि जो पूज्य महात्माजी गत वर्ष तक गोवध को कानून द्वारा बन्द कराने के प्रबल समर्थक थे वही अब कहें कि इस विषय में कानून नहीं बनाना चाहिए। गोवध निषेध और मूर्तिपूजा निषेध की कोई तुलना नहीं हो सकती। गोवध निषेध की मांग धार्मिक दृष्टि से नहीं किन्तु आर्थिक और संपत्ति से भी की जा रही है क्योंकि गोवध के कारण गोवंश का नाश होने से दूध घी आदि उपयोगी पौष्टिक वस्तुओं की कमी से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख और सभी को हानि उठानी पड़ती है। बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाह आलम आदि ने अपने राज्य में इसे बंद किया था। गोवध निषेध के समान कोई चीज पाकिस्तान सरकार कर सकती है तो वह सुअर के मांस के सेवन और बिक्री पर प्रतिबन्ध है। इससे कोई हानि न होगी यदि उसने ऐसा प्रतिबन्ध लगाना उचित समझा। गौवध निषेध विषयक प्रबल आंदोलन अवश्य जारी रखना चाहिए।

इस लेख से यही सिद्ध होता है कि गाँधी जी सदा हिन्दू हितों की अनदेखी करते रहे। खेद जनक बात यह है कि उनकी तुष्टिकरण उनके बाद की सरकारें भी ऐसे हो लागु करती रही। नेहरू जी की सरकार ने और १९६६ में प्रबल आंदोलन के बाद इंदिरा गाँधी ने भी गोवध निषेध कानून लागु नहीं किया। मोदी जी को भी ६ वर्ष हो गए है। यह कानून कब लागु होगा? हिन्दुओं में एकता की कमी इस समस्या का मूल कारण है।

अध्यात्म पथ का आयोजन

स्वस्थ रहें मस्त रहें अस्त-व्यस्त न रहे : -आचार्य चंद्रशेखर

नई पीढ़ी को सुनना सिखाएं: आचार्य डॉ. अजय आर्य

ऋषि दयानंद की २००वीं जयंती पर व्यवहार भानु पुस्तक की निशुल्क वितरण की योजना आध्यात्मिक चिकित्सा पर विचार गोष्ठी अध्यात्म पथ पत्रिका के तत्वावधान में विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मंगलाचरण के रूप में नरेंद्र आर्य सुमन ने ईश्वर भक्ति का भजन प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का संयोजन सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री ने किया। उन्होंने कहा- नदी, झरने सागर की ओर जाते हैं। सागर विराट है और विशाल। एक बार झरने ने सागर से मिलने से इनकार कर दिया। उसने कहा मैं विराट होकर अगर खारा हो जाऊं, पीने योग्य ना रहूं तो मेरा कोई मूल्य नहीं है। अगर हम सब बड़े होकर समाज के काम नहीं आते तो हमारा बड़प्पन व्यर्थ है। हम सबको प्रयास करना चाहिए कि हम भले ही छोटे रहे किंतु समाज और परिवार के लिए उपयोगी बने रहे।

कार्यक्रम के प्रथम चरण में डा० राजीव ग्रोवर एक्यूप्रेशर एवं मर्म थेरेपी के विशेषज्ञ ने अनेक क्रियाएं कराई । उन्होंने कहा योग की छोटी-छोटी क्रिया बड़ा परिणाम देती हैं। नाभि दूसरा मस्तिष्क है जिसमें ७०००० से अधिक नाडिया जुड़ी हुई है । नाभि की सुरक्षा के लिए नीम के तेल का उपयोग करना चाहिए । क्लैपिंग से एक्यूप्रेशर के केंद्र बिंदु जागृत होते हैं । लाफिंग थेरेपी व्यक्ति के भीतर सकारात्मक ऊर्जा जागृत करती है ।

मुख्य वक्ता आचार्य डा० अजय आर्य ने कहा- स्वस्थ रहने के लिए जरूरी है कि हमारा मस्तिष्क ठंडा हो, जीभ में मिठास हो और हृदय में संतोष हो। ये तीन सूत्र जीवन को सुख से भरने के लिए पर्याप्त है। वेद का मंत्र कहता है जीने के लिए देना सीखो। बुराइयों को मारना सीखो। और अच्छाइयों को जानने की इच्छा बनाए रखो। यही जीवन को सकारात्मक दिशा देने का मूल मंत्र है। आज हम सब बोलना चाहते हैं सुनना कोई नहीं चाहता। हम सभी को अपनी पीढ़ी को सुनना सिखाना चाहिए। आजकल तो एलेक्सा का जमाना है जो यह बताता है कि बोलने से सब होगा। किंतु आचार्य चाणक्य कहते हैं सुनने से सब होता है। सुनने का गुण धैर्य विकसित करता है। सुनने वाला व्यक्ति अवसाद और तनाव से दूर रहता है। आचार्य ने चुटकी लेते हुए कहा- एक बार एक महिला एक पंडित जी के पास पहुंची और उसने कहा कि मुझे घर में सुख शांति रखने का उपाय बताइए । कौन सा व्रत रखने से घर में सुख शांति रहेगी। आज कल मैं शनिवार का व्रत रख रही हूं। पंडित जी महिला के स्वभाव को जानते थे। उन्होंने कहा- आप सिर्फ मौन व्रत रखो । इसी से घर में शांति रहेगी।

कार्यक्रम में प्रेम हंस, निशा भानु डोली ईश्वर देवी जेके अग्रवाल, सत्यपाल वत्स भारत सचदेवा, रविंद्र गुप्ता, कमला हंस, कमलेश, आर्य कविता आर्य, के.डी. अरोड़ा, नरेंद्र, पति राम साहू, सुलोचना आर्य, संतोष धर, संतोष श्रुति, सुनीता, सुरेश, उषा, सावित्री, संतोष नंदवानी, शशि मल्होत्रा, स्नेह लता, सुदेश गुप्ता, सुनीता गांधी आदि उपस्थित रहे।

इस अवसर पर अध्यात्म पथ के संपादक आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री ने डा० अजय आर्य को पत्रिका का विशेषांक देकर सम्मानित किया।

पृष्ठ ५ का शेष.....

सकल सामग्री को हवि बना ले और उसे प्रभु के आहुत कर दे वह साधक ऐसा विचार करे कि अब तो मैं ईश्वर प्राणिधान कर चुका। अपना सर्वस्व उस प्रभु के समर्पित कर दूँ।

५. पंचमो मन्त्रः-

ओं येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। यजु० ३२.६

ऋषि भाष्यमू- जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया। जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण किया और जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया। जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता है और भ्रमण कराता है हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

इतना कुछ विचार करने के उपरान्त वह स्पष्ट जान लेता है कि वह परमेश्वर महासामर्थ्यवान है हम उस की उपेक्षा नहीं कर सकते। उस प्रभु में समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने की शक्ति है चाहे वह तीक्ष्ण स्वभाव के सूर्य आदि ही हों और चाहे पृथ्वी जैसे दृढ़ से दृढ़ पदार्थ हो और तुझ जैसे तुच्छ प्राणी में एक परमाणु को भी धारण करने का सामर्थ्य नहीं है। उसने तो सांसारिक सुखों को भी धारण किया। है और परमानन्द का भी धारणकर्तृता है। तुझ उपासक को चाहे सांसारिक सुख की इच्छा हो, चाहे मोक्ष की, तुझे उसके शरणागत होना पड़ेगा। क्योंकि उसने सब लोक लोकान्तरों को विशेष नियम व अपने सामर्थ्य से रचा है। सभी लोक, सूर्य, नक्षत्र आदि अपनी मर्यादा, अवधि व स्व परिधि में विचर रहे हैं। वह सभी का विधाता है और तू किसी का भी विधाता नहीं। इसलिये कह 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। यहाँ प्रसंग के अनुसार स्वामी जी ने इनका अर्थ किया है हम उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब सामर्थ्य से सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

अतः हम सब संकल्प विकल्प को छोड़कर अपने पूर्ण सामर्थ्य से हवि अर्पित करें। यदि तू अपने पूर्ण सामर्थ्य से अपने आप को समर्पित कर देगा तो फिर देर नहीं कि वह तेरा सहायक न हो क्योंकि वेद का आदेश है 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः God Helps those who help themselves सारांश यह कि आकाश के तुल्य व्यापक जो परमेश्वर है, उसी की भक्ति करो।

६. षष्ठो मन्त्रः -

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नौ अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।। ऋग्वेद १०.१२.१०

ऋषि भाष्यमू-

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! आप से भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादि को नहीं तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और वांछा करें उस उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

हे परमपिता परमात्मा हम आपकी प्रजा हैं आपके अतिरिक्त हमारा कोई नहीं और हम केवल आपका ही आश्रय लेते हैं क्योंकि आप सर्वोपरि हों। जब उसके प्रति दृढ़ विश्वास हो जाता है तो उपासक पुकार उठता है कि हे प्रभो! जो जो हमारी कामना हो उसके लिये केवल मात्र आपको ही पुकारें क्योंकि हमें मालूम समस्त संसार आप ही के दर का भिखारी है। हम आपकी कृपा से ऐश्वयों के स्वामी है कि हो जायें।

७. सप्तम मन्त्रः

औं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।। यजु० ३२.१०

ऋषि भाष्यमू- हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत का उत्पादक, वह सब कामों का पूर्ण करने हारा सम्पूर्ण नाम स्थान जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा को मोक्ष में प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति करें।

जब उस परमपिता परमात्मा पर उसका दृढ़ विश्वास हो जाता है और परमात्मा को ऐश्वर्यवान मानता हुआ, उस गुण को अपने लिये भी प्रार्थना करता है क्योंकि अब वह समझता है कि मेरा उसके साथ पिता पुत्र का सम्बन्ध है, भाई-भाई का सम्बन्ध है। इस बन्धुत्व भाव को समझ कर उसने उसी तरह ऐश्वर्य की प्रार्थना की। क्योंकि पिता-पुत्र, भाई-भाई का सम्बन्ध हो तो ऐसा तो नहीं हो सकता कि पिता ऐश्वर्यवान हो और पुत्र ऐश्वर्य रहित हो। यही उसकी प्रार्थना है। उपासक यह भी समझता है कि हर प्राणी को उसकी व्यवस्था के अनुसार कर्मफल भोगना पड़ेगा। क्योंकि कर्मफल का वह विधाता मेरा भाई पिता है कोई शत्रु नहीं जो द्वेष भाव से मुझे दण्ड देगा। और यदि दण्ड भी देगा तो भी कल्याण की भावना से ही देगा।

हे प्रभो! आप सब लोक लोकान्तरों को उनके नाम स्थान और जन्म को जानते हो। आप सम्पूर्ण विश्व को सर्वात्मना जानते हो, मैं भी परमपिता परमेश्वर उस तीसरे धाम में जाना चाहता हूँ, जहाँ अमृत को भोगते हुए ज्ञानी जन स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं। क्योंकि इस सांसारिक सुख दुःख से रहित जीवात्मा की तीसरी स्थिति वह है जहाँ वह प्रभु के आनन्द में विचरण करता है, यही वह तीसरा धाम है।

पहली स्थिति जिसमें दुःखमय जीवन है, दूसरी सुखमय जीवन और तीसरी जिसमें आनन्दमय जीवन है। वह यह भी जानता है कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती और इस तीसरे धाम में अज्ञानियों का वास नहीं है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति"। अब उस की अभिलाषा है कि जहाँ जन्म मरण के बन्धन से मनुष्य छूट जाता है, उस मोक्ष सुख को मैं प्राप्त करूँ।

८. अष्टम मन्त्रः -

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमः उक्तिं विधेम ।। यजु० ४०.१६

ऋषि भाष्यमू-

हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त है कृपा करके हम लोगों को विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्म युक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हम से कुटिलता युक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिये इस कारण हम लोग आप की बहुत प्रकार की स्तुति रूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

हे प्रभु मैंने आपको ज्ञान का भण्डार और प्रकाश का स्रोत समझा है इसलिये प्रकाशवान एवं ज्ञानवान भगवन् आप मेरे पथ प्रदर्शक बनें। मैंने वहां तृतीय धाम अर्थात् मोक्ष स्थान को प्राप्त करना है आप मुझे शोभनमार्ग से चलाना, सुन्दर लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्ग पर चलाना। आप हमारे सब कर्मों को जानने वाले हो आप हम से कुटिलता पाप दूर कर दीजिये ताकि मैं आपके उस शोभायमान पथ को प्रशस्त कर सकूँ ।

अन्त में उपासक उस परमेश्वर को विश्वास दिलाता है कि हे प्रभु मैं आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना में लगा रहूँगा। प्रार्थना से मेरा अभिमान दूर होगा और उपासना से पाप से छूटता हुआ आप के सान्निध्य में आऊँ।

इस प्रकार वह भक्तिभाव से ओतप्रोत हो जाता है और योग्यता से सम्पन्न होता हुआ श्रेष्ठतमं कर्म यज्ञ का अधिकारी बन जाता है।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र २५ मई एवं ०१ जून, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१

एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

सभा मंत्री को पुत्र शोक

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के मंत्री श्री पंकज जायसवाल के पुत्र श्री सार्थक जायसवाल का दिनांक २८ मई २०२२ को अकस्मिक देहांत हो गया।

स्व. सार्थक के मृत्यु समाचार से प्रदेश के आर्यों ने शोक संवेदनाएं व्यक्त करते हुए उनकी सद्गति की ईश्वर से प्रार्थना की।

स्व. सार्थक की अंत्येष्टि संस्कार दिनांक २९ मई २०२३ को रसूलाबाद घाट, प्रयागराज में परिजनों व तमाम आर्य जनों की उपस्थिति में पूर्ण वैदिक विधि से किया गया।

दिनांक ३१ मई २०२३ को स्वर्गीय सार्थक जायसवाल की स्मृति में शांति यज्ञ व श्रद्धांजलि सभा का आयोजन सभा मंत्री श्री पंकज जायसवाल के निज निवास गोलपार्क अतरसुइया, प्रयागराज में किया गया। श्रद्धांजलि सभा में आर्य सभा के प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा व अनेक पदाधिकारी गण, तमाम आर्य बंधुओं सहित परिजन व प्रतिष्ठित लोगों ने भावपूर्ण शब्द पुष्प अर्पित किए।

आर्य मित्र परिवार व सभा कार्यालय के कर्मचारी गण दिवंगत आत्मा के मोक्ष व परिजनों को यह असहनीय दुःख सहने करने की ईश्वर से प्रार्थना की है।

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा जनपद हापुड़ में दो दिवसीय आर्य परिवार सम्मेलन

गंगा दशहरे के शुभ अवसर पर प्रकाश वीर शास्त्री भवन बृज घाट हापुड़ में दो द्विवसीय आर्य परिवार सम्मेलन उत्साह पूर्वक मनाया। कार्य क्रम का शुभारंभ पवित्र वेद मंत्रों द्वारा यज्ञ से हुआ ।यज्ञ के ब्रह्मा स्वामी अखिलेश्वरानंद, धर्मेंद्र शास्त्री, आचार्य प्रमोद शास्त्री रहे। यज्ञमान के रूप में आनंद प्रकाश आर्य,पवन आर्य,संजय शर्मा सह पत्नी रहे।

सर्वश्री जगमाल सिंह आर्य, रामपाल आर्य ने ईश्वर भक्ति एवम ऋषि दयानंद सरस्वती के कार्यों का गुणगान किया। आचार्य प्रमोद शास्त्री,गढ़मुक्तेश्वर ने आर्य समाज द्वारा देश व हिंदू जाति पर किए गए उपकारों से अवगत करा कर आवाह किया कि आज भारतवर्ष की जटिल समस्याओं के निराकरण के लिए पूर्व की भाती कार्य करने होंगे।

श्री धर्मेंद्र शास्त्री पुरोहित आर्य समाज हापुड़ ने अपने उद्बोधन में वेद मंत्रों की व्याख्या करते हुए बताया कि हमे सत्य,श्रद्धा,उपासना से ईश्वर को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए ।आपने बताया कि एक मात्र वेद का मार्ग ही शस्वत सत्य है। आर्य समाज वेद ज्ञान से ही अन्य मतावलंबी का दुष्प्रचार बंद करता है और इसे मुस्लिम धर्म गुरु भी स्वीकार करते है।

श्री आनंद प्रकाश आर्य ने कहा कि वेद हमे एक हाथ में शस्त्र और दूसरे हाथ में शास्त्र रखने का आदेश देता है अतः हम आर्यों का कर्तव्य बनता है की हम स्वयं इस पर ध्यान दें तथा अपने सोए हुए समाज को जगाकर देश व धर्म हित में कार्य करें,तभी हम आर्य कहलाने के अधिकारी होंगे। ऋषिवर दयानंद सरस्वती द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश एक ऐसा कलजायी ग्रंथ है जिसके आगे कोई भी मतावलंबी अपनी डींगे नहीं हांक सकता है।

आर्य परिवार सम्मेलन में जनपद हापुड़ के अनेकों आर्य समाज के सदस्यों ने सहभागिता करी।

सर्वश्री पवन आर्य-प्रधान, अनिल आर्य, कोषाध्यक्ष-जिला सभा, गढ़-सुरेंद्र कबाड़ी, आनंद प्रकाश आर्य, सुरेश सिंघल, संजय शर्मा, प्रेम प्रकाश आर्य, चमन सिंह शिशोदिया, सुंदर लाल आर्य, विजय कुमार आर्य, रविंद्र उत्साही पिलखुवा, कुंवर पाल सिंह आर्य, ओम प्रकाश आर्य गाजियाबाद, अशोक आर्य प्रधान जिला सभा, सर्वश्रीमती वीना आर्या, माया आर्या, रेखा गोयल, शशि सिंघल, प्रतिभा भूषण, आदि ने व्यवस्था करने में सहयोग किया।

आर्य समाज गुधनी, बदायूँ का वार्षिकोत्सव एवं यज्ञ मन्दिर का उद्घाटन

आर्य समाज गुधनी, बदायूँ का १०९वाँ वार्षिकोत्सव एवं यज्ञ मन्दिर का उद्घाटन कार्यक्रम दिनांक १५ जून, २०२३ से १९ जून, २०२३ तक स्थान यज्ञ मन्दिर, गुधनी (बिल्सी-बिसौली मार्ग) बदायूँ में समारोह पूर्वक मनाया जायेगा।

समारोह के मुख्य अतिथि माननीय बी.एल. वर्मा, केन्द्रीय राज्य मंत्री भारत सरकार एवं आशीर्वाद आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा द्वारा होगा।

कार्यक्रम में दिनांक १५ जून को भव्य शोभा यात्रा व सांस्कृतिक सम्मेलन दिनांक १६ जून को ऋग्वेद पारायण यज्ञ व सत्संग, दि. १८ जून ऋग्वेद पारायण यज्ञ की पूर्ण आहुति, दि. १९ जून यजुर्वेद पारायण यज्ञ व विशाल भण्डारा का आयोजन होगा।

सभी धर्म प्रेमी नर-नारियों से निवेदन है समारोह में ईष्ट-मित्रों सहित पधार कर उत्सव को सफल कर अपने जीवन को धन्य बनायें।

सम्पार्क सूत्र-**आचार्य संजीव रूप-९९९७३८६७८२**

सत्यार्थप्रकाश– शंका समाधान

-पंडित मूल चंद्र शर्मा

शंका१- सत्यार्थ प्रकाश में कबीर को मुर्ख क्योंबताया है?

समाधान- सत्यार्थप्रकाश में कबीर को मूर्ख नहीं बताया अपितु उनके चेले चपाटों को मूर्ख बताआ है जो उनको परमात्मा मान कर पूजते हैं।

शंका२- सूरज चांद पर लोग रहते है वहां वेद पढे जाते हैं?

समाधान- जीवों को वसाने में सहायक होने के कारण यह भी वसु कहाते हैं। ईश्वर की रचना बडी विचित्र है इनका कोई भाग जीवों के रहने के अनुकूल भी हो सकता है।योगी आप्त महापुरुषों के वचन वैज्ञानिकों के बदलते रहते वचनों से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

शंका३- नारी का अपमान किया,गंगा पार्वती काली नाम वाली कन्यायों से विवाह नहीं करे लिखा है,नदियो के नाम वाली कन्या (गंगा कावेरी गोमती कृष्णा मांडवी आदि के नाम वाली)से विवाह न करने को लिखा है।

समाधान- सुन्दर सार्थक नाम का बडा महत्व है,जो मां बाप बच्चों के उल्टे पुल्टे नाम रखते हैं वे अपने बच्चों को क्या संस्कार देगें !ऋषि दयानंद जी ने नारी को पूज्यनीय बताआ है।

शंका४- नियोग व्यभिचार है, विधवा से नियोग करने को कहा। पति विदेश जाये तो तीन साल बाट देखे फिर नियोग कर ले। पत्नी गर्भवती हो तब पडोसन से नियोग करे।

समाधान- नियोग केवल सन्तान प्राप्ति के लिये आपातकालिन वैज्ञानिक वेदानुकूल व्यवस्था है। पाण्डु धृतराष्ट्र विदुर भी नियोग से ही पैदा हुये थे। आजकल किराये की कोख और वीर्य बैंकों की स्थापना नियोग का ही एक बिगडा हुआ रुप है। यह कहीं नहीं लिखा कि पत्नी गर्भवती हो तो पडोसन से नियोग करे।

शंका५- ४८ साल के पुरूष का २४ वर्ष की स्त्री से विवाह करना श्रेष्ठ लिखा है..?

समाधान- यह उत्तमोतम आदर्श विवाह योग्य आयु है क्यों कि इस आयु में शरीर में सब धातुओं की पुष्टि होती है। यह कठिन हो तो दूसरे विकल्प भी बतायें हैं।हंसी तो तब आती है जब मूर्ख लोग वक्ता वा लेखक के अभिप्राय से उल्टा अर्थ करते हैं।

शंका ६ - यजुर्वेद २५.७ में गुदा में सर्प ले जाने की बात कही है?

समाधान- इसमे शरीर विज्ञान का अलंकारिक भाषा में वर्णन है,अतंडियों के उतकों(अपससप) की तुलना सांपो से की गई है। मूर्ख अनाडी लोग इसका उल्टा ही मतलव लेते हैं।

द्वेष वैमनस्य से ग्रस्त कुछ लोगों को ऋषि दयानंद जैसे योगी महापुरुषों की बातें समझ नहीं लग सकती। ऐसे धूर्तों द्वारा समय समय पर सत्यार्थप्रकाश पर कई प्रकार के आक्षेप किये गये हैं जिनका समाधान वैदिक विद्वानों द्वारा लिखित ''पौराणिक पोल प्रकाश'' एवं ''पौराणिक पोप पर वैदिक तोप'' आदि पुस्तकों के माध्यम से किया गया है।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस, 5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।